परिवर्तन का नया स्वर : बिल्लू शेक्सपियर पोस्ट – बस्तर

डॉ॰ अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलोर
फोन – 8886995593/8142623426
ईमेल - anupama.tiwari@alliance.edu.in

वर्ष 2014 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित उपन्यास 'बिल्लू शेक्सपियर पोस्ट – बस्तर' अनामिका जी कृत एक नहीं अपितु कई विषयों पर कोलाज बनाता बहुत ही अलग और गंभीर उपन्यास है। यह अनामिका के लेखन का वैशिष्ट्य ही है कि उनके व्यक्तित्व की सादगी और वाणी की मिठास उनकी रचनाओं में घुलमिलकर चिंतन, मंथन और उद्बोधन के कई तार की चाशनी से पाठकों को आह्लादित करती हैं। 'बिल्लू शेक्सपियर पोस्ट – बस्तर' उपन्यास की कथा वस्तु उनमें से नहीं है कि जिसे एक बार पढ़ना आरंभ किया और कहानी की रफ्तार पकड़ते ही बहुधा आगे की कथा पाठकों के लगाए गए कयास के अनुरूप ही होती है। मेरे लिए यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में एक नया प्रयोग है। इसकी संक्षिप्त कथा बस इतनी ही है कि – जे एन यू से पढ़ी लिखी, मध्य प्रदेश के बस्तर जिले में आदिवासियों के मध्य रहती, एक अलग ही व्यक्तित्व के डॉक्टर की पत्नी और उपन्यास की नायिका 'मान्यता' वंचित, शोषित, तिरस्कृत, उपेक्षित, पीड़ित आदिवासियों को शिक्षित करती हैं और उन अनपढ़ लोगों को उनके अधिकार के प्रति सजग कर स्थानीय राजनीति के कुचक्रों से बचाना चाहती हैं । इसके लिए वे आदिवासी क्षेत्र में कथासत्रम की पाठशाला चलाती हैं और कहानियों के माध्यम से उनके जीवन में बदलाव लाना चाहती हैं। परिवार और समाज की आलोचना को प्रसाद स्वरूप ग्रहण करती, अपने लक्ष्य में सफल होती मान्यता संयम से अविरत कार्य में जुटी रहतीं। कथासत्रम के पाठ्यक्रम की सामग्री तैयारी में वे विदेश में बसे अपने मित्र आशीष मुखर्जी से मश्वरा लेतीं। कार्य के बढ़ते भार और छात्रों की भारी संख्या को देखकर वे आशीष को भी बस्तर बुलाती हैं और शुभत्व से भरे दोनों मित्र एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए कार्य करने लगते हैं। बाद में मान्यता की रहस्यात्मक मौत हो जाती है और उसके पढ़ाये छात्र सच से अवगत होने एवं मान्यता को न्याय दिलाने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगाते हैं और सफल होते हैं।

इस उपन्यास को बड़े ही व्यवस्थित ढंग से तीन खंडों में विभाजित किया गया है। **खंड एक – 'बिल्लू की डायरी : आत्मा के जासूस'** में उपन्यास में आये सभी पात्रों से पाठक परिचित हो सकते हैं और कथा वस्तु के उद्देश्य को जान सकते हैं। महत्वपूर्ण अंश जो है - वह एक स्त्री के संघर्ष, पारिवारिक समायोजन, उसकी बुद्धिमत्ता, मातृत्व दायित्व एवं सम्बन्धों के सूत्र को पिरोये रखने के कौशल का है। 'मान्यता' उच्च शिक्षा प्राप्त, संस्कारी और संयमशील स्त्री तो हैं परंतु अनाचरण और लोगों के दुर्व्यवहार से डरकर असंगत को समृद्ध करने की आग्रही नहीं हैं और न ही झूठी शानो – शौकत व भौतिक सुविधाओं की आकांक्षी। इस कथा नायिका के माध्यम से लेखिका ने एक ऐसी स्त्री का गठन किया है जिसकी आवश्यकता वर्तमान समय की मांग है। माँ और बेटी का संबंध सबसे अधिक विश्वसनीय और मित्रतापूर्ण होता है। बेटी का सही मार्गदर्शन कर उसे सही – गलत में अंतर करने की सीख प्रदान करना तथा वैचारिक रूप से तटस्थ और मजबूत बनाना माँ का ही दायित्व होता है। मान्यता ने अपनी बेटी को कुछ इसी प्रकार समझाया है – "बुरा मानना छोड़ दो ! बुरा से जाने – अनजाने हमारा अवचेतन प्रतिपक्षियों के ही रंग में रंग जाता है। प्रहार का बिन्दु प्रतिपक्षी का निजी चरित्र नहीं, वह महत्तर कुवृत्ति हो जिसके प्रतिनिधित्व का उसने ठेका ले रखा है। प्रहार उस कुवृत्ति पर हो और उसके आदिस्रोत पर – सिस्टम पर! व्यक्ति

की विसात ही क्या, वह तो मोहरा है चर्चा समीक्षा का विषय तो वृत्तियाँ होती हैं और घटनाएँ जो खल घटित करते हैं ।"1 स्पष्ट है कि कुशलता से लेखिका ने बेटी की ओट में समूचे समाज में परिव्याप्त पारंपरिक व्यवस्था का प्रतिरोध किया है तथा सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । सत्य है कि परिवर्तन की अलख जगाने के लिए मन में संकल्प और दृढ़शक्ति की विशेष आवश्यकता होती है । प्रतिरोधी के दुर्व्यवहारों का अतिक्रमण उससे व्यक्तिगत बदला लेकर नहीं किया जा सकता अपितु उसके मनोभावों को और व्यापित जो समाज की दुर्व्यवस्था और सिस्टम है उस पर प्रहार कर समाज को उसके जकड़ से मुक्त कराने में है । यद्यपि कुत्सित व्यवस्था को ध्वस्त करने का संकल्प जोखिम भरा होता है परंतु असाध्य नहीं । अवश्य ही परिवर्तन के इस मार्ग में समाज की संरचना और कार्यप्रणाली का एक पुनर्जन्म होता है और "जमींदार की तरह रहे स्त्री के मालिक लोग उसको वे हक कैसे दे सकते हैं, जिन्हें बड़े कौशल से हथियाकर उन्होने औरत को गुलाम बनाया है ।"2 अव्यवस्था की उन बेड़ियों को तोड़ने का सार्थक प्रयास और उससे व्युत्पन्न परिणाम ही समाज का पुनरुत्थान करते हैं । इस सामाजिक उत्थान के लिए दो आवश्यक पक्ष अनिवार्य हैं, एक तो – विकसित मानसिकता के धनाढ्य लोग और दूसरे हर वर्ग व श्रेणी की स्त्री के आवाज को समझने, परखने और गुनने वाले लोग । विडम्बना यह है कि - "साधारण स्त्री का भी कोई जीवन हो सकता है, यह मान्यता अभी तक हमारे समाज में पूरी तरह नहीं पकी है । स्त्री असाधरण हो, शक्ति के पदानुक्रम में ऊँचा बैठी हुई, महिला अफसर या मंत्री, तो चलता है लेकिन मुझ जैसी साधारण स्त्री की व्यस्तता या कहो अति – व्यस्तता, किसी वृहत्तर उद्देश्य के प्रति प्राणपन का समर्पण अक्सर क्रूर, उपहास और भयावह रोष का ही कारक बनते हैं ।"3 यह सच है कि आज के समाज में 'का' और 'की' का अंतर्भेद मिटाने के लिए स्त्रियॉं को जागरूक किया जा रहा है, कई प्रकार की योजनाएँ बनाई जा रही हैं, स्त्री साक्षरता और आर्थिक स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया जा रहा है पर इसके आड़ में इन सबके उपभोक्ता, समाज के सत्ताधारी ही होते हैं । इससे यह सिद्ध है कि सत्ता जिसकी होगी, शासन उसी का रहेगा । इससे फर्क नहीं पड़ता कि स्त्री है या पुरुष । असाधारण स्त्री की बात लेखिका ने की है तो यह भी ध्यातव्य है कि – असाधारण बनी वह स्त्री भी पहले साधारण ही होती है परंतु अपने परिवेश के कई जघन्य चुनौतियों और कसौटियों पर पार पाने के पश्चात ही वह असाधारण बन पाती है । शक्ति के पदानुक्रम पर आसीन स्त्री भी कई रेखाओं को लांघकर, अवमानना और तिरस्कार के गंगाजल का पानकर के ही सफल होती है अन्यथा भोग्या समझी जाने वाली स्त्री का अपना भी कोई चिंतन पक्ष होता है, उसका भी कोई अधिकार होता है इस बात को बहुत कम ही पुरुष स्वीकार कर पाते हैं । "क्या है पुरुष – चित्त की समस्याएँ? कुछ तो दबंग पत्नियों से दबते हैं, कुछ स्वाधीन स्त्रियॉं को 'करियर – बीच' कहते हैं । ज़्यादातर लोग स्त्रियॉं को पहचानते भर हैं, जानते नहीं । स्त्री -विषयक उनका ज्ञान अधकचरा होता है । और प्राय: सबके मन में यह नृशंस आकांक्षा लगातार फण काढ़े रहती है कि और स्त्रियाँ पुरुषों से तो ठंडी, तटस्थ आवाज में मैटर-ऑफ-फ़ैक्ट की बातें करें पर उनके इशारों पर नाचें, रह रहकर उनके सिजदे में बिछ जाएं । जब पुरुष पुंगवों को बीवी – बच्चों से फुरसत हो, वे उनसे मिलने चली आयें – वह भी अकेले बंद कमरे में । xxxx एक तथाकथित सुलझे हुये व्यक्ति के मुंह से मैंने सुना – 'ज्ञान का स्तर बराबर हो तो बात की जाये, ये तो ज्ञान का दोहन करने आती हैं और बदले में जो दे सकती हैं, देने में लगती हैं आना – कानी करने । 'देयर इज नो फ्री लंच ! इतना समय हम इनके साथ क्यों बर्बाद करे?'"4 अनामिका ने बड़े ही तल्ख शब्दों में बहुधा पुरुषों की प्रवृत्तियों को अनावरित किया है जो अक्षरश: सत्य है । जब हमारे समाज में स्त्रियाँ अशिक्षित होती हैं तो उन्हें बेचारगी भाव से देखा जाता है, जब शिक्षित होकर ठोस कार्य से कुत्सित वातवरण को परिवर्तित करने का सार्थक प्रयास करती हैं तो मूर्ख समझी जाती हैं । उनके लक्ष्य में रोड़े अटकाने वाले सज्जन अधिक होते हैं जबकि सहयोगी बहुत ही कम । इसका मुख्य कारण यह भी है कि जिस पद पर आसीन होकर वह निर्णय लेना चाहती है उस परिवेश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियॉं की संख्या कम होती है अत: समूह पर परिणाम टिका होता है । ऐसी परिस्थिति में उसके निर्णय और ज्ञान का आकलन

किया जाता है एवं तुच्छ साबित करने की योजनाओं पर कई पुरुष मस्तिष्क लग जाते हैं। अनामिका पहली ऐसी लेखिका हैं जिन्होने बहनापा को विशेष महत्व दिया है तथा उस अवधारणा को मिटाने की कोशिश की है कि – 'स्त्री ही स्त्री की शत्रु होती है।' किसी भी माँ के लिए बेटी की सही परवरिश सबसे बड़ी चुनौती होती है उससे भी क्लिष्ट होता है समाज के खूंखार कामुक व्यक्तियों की कुदृष्टियों से अपनी बेटी को बचाकर रखना। मृत्यु शैय्या पर सांस लेती अपने जीवन के अंतिम क्षणों में बेटी शेफालिका के लिए लिखा गया मान्यता का पत्र देश नहीं अपितु विश्व की प्रत्येक माँ के हृदय के उद्गार हैं - "प्रकृति की तुम पर कृपा है। उसने अपना रूप वैभव तुमको दिया है। बहुतेरे लोग तुम्हारे करीब आना चाहेंगे। यह दुनिया थके – हारे, क्षुधित – तृषित लोगों की ही दुनिया है। सबको छांह चाहिए और वह दाना पानी जो एक भरी पूरी स्त्री का साथ ही उनके लिए जुटा सकता है ! कोई भी मैत्री किसी चकरचाल से शासित नहीं होने देना।"5 मर्यादा और सत्य के मार्ग पर चलने वाली मान्यता समाज के सभी रूपों से बेटी को अवगत कराती है। संस्कार की यह संपदा ही माताएँ अपनी तनया को विरासत में देती हैं। जिसने अनुकरण किया वह दूसरी पीढ़ी को तैयार करती है और जिसने उल्लंघन किया वह भी अपनी पीढ़ी तैयार करती है परंतु ठोकर खाकर। ठोकर खाना कुछ तो कर्म पर निर्भर होता है और बहुधा स्त्रियॉं की नियति होती है। "मार-डांट मेरे जीवन का उठौना है! जैसे दूध और सब्जी उठौना होता है न - वैसे ही, औरतों के जीवन में अक्सर मार – पीट भी उठौना होता है। जैसे मुंह धोया, खाना पकाया, वैसे ही दस बारह झोंक डांट – खायी, छठे – छमासे धौल – धप्पा भी खा लिया, तीन – चार मास पर 'गेट – आउट','शट – अप', के दूर्वा - चन्दन से अपनी खोई खुदी का रुद्राभिषेक भी करा डाला – इसी तरह रोते- झींकते, वैकल्पिक जीवन की कल्पनाएं छांटते जिंदगी कट जाती है !"6 (वही – पृ०- 53) मान्यता शिक्षित स्त्री है पर आर्थिक रूप से पूर्णरूपेण सक्षम नहीं है। ऐसे में अपने डॉक्टर पति से उसे अवमानना, तिरस्कार, उपेक्षा और व्यंग्य का डोज़ और मेडिसिन मिलना वाजिब है। यह संदर्भ कई बार उठाया जाता है कि आर्थिक अक्षमता स्त्री के कमजोर होने का सबसे बड़ा कारण है परंतु ऐसे भी कई उदाहरण मिल जाते हैं जहां यह कारण न होने पर भी स्त्री को चुप रहना पड़ता है। पति के समक्ष हाथ फैलाने की स्थिति न होने पर भी अगर वह अत्याचारों पर चुप रह जाती है तो इसका भी एक श्रेष्ठ कारण है – परिवार की इकाई, कलह मुक्त वातवरण, बाल्यावस्था से ही प्रतिकार न लेने की सीख तथा अपने लक्ष्य को पाने के लिए लोगों की बातों को अनदेखा – अनसुना करते हुए चुपचाप अपना कार्य करते चले जाना। मान्यता का चरित्र यही सीख देता है कि अगर आपका लक्ष्य ऊंचा है और आप निष्ठा से उसे पाना चाहते हैं तो कुछ बातों को नजरंदाज करने में ही भलाई है। उपन्यास का दूसरा खंड है – 'सत्य अपना प्रमाण खुद है : चिट्ठियों की गवाही'। यह समूचा खंड पत्राचार शैली में लिखा गया है जो बहुत ही नवीन और उपयोगी है। कथासत्रम चलाने की योजना और पाठ्यक्रम में शेक्सपियर और डिकेंस के नाटकों का संकलन अद्भुत है। अपने शुभेच्छु, कॉलेज के सहपाठी और विवाह पूर्वप्रेमी आशीष मुखर्जी को लिखे गए पत्र में दूरस्थ शिक्षा के पाठ्यक्रम के बहाने अनामिका जी ने हिन्दी पाठकों को शेक्सपियर और डिकेंस के नाटकों का सार पढ़ाया है। हिन्दी औपन्यासिक जगत में यह प्रथम और नवीन प्रयोग है कि किस प्रकार विश्व की कालजयी रचनाओं से अपने पाठकों को परिचित कराया जाये। निसंदेह नाटकों के सार को पढ़कर कई प्रकार की भावनाएं मन में आती हैं यथा – हमारे देश में अब तक ऐसी रचनाएँ नहीं लिखी गई हैं, कथावस्तु हमारे यहाँ के लेखन से बहुत भिन्न है आदि। इसी क्रम में पत्र व्यवहार के द्वारा आशीष और मान्यता के सम्बन्धों की गहराई और पवित्रता का पता चलता है। स्त्री को परिभाषित करने के लिए कई विशेषणों का प्रयोग किया जाता है यथा – दयालू, ममतामई, स्नेही, लक्ष्मी, गाय, धरती आदि आदि..... । इनमें से जो एक प्रबल और सत्य विशेषण है वह है प्रेम का । स्त्री का प्रेम निश्छल और निर्मल होता है। सृष्टि के विकास में योग देने वाली अत्यंत सहज एवं सशक्त प्रवृत्ति प्रेम -भावना है। यही भावना मानवीय चेतना को विकास के अनंत आयाम प्रदान करती है। समस्त कलाओं में प्रेम भावना की अभिव्यक्ति अत्यधिक मात्रा में पायी जाती है। प्रचलित भाषा

में इसी राग तत्व को 'प्रेम' कहा जाता है परंतु इसे देखने, परखने और समझने के संदर्भ में हमारे समाज का जो दृष्टिकोण है वह कभी – कभी भ्रामक और विनाशक भी हो जाता है। कई संदर्भों में यह समझाना जटिल हो जाता है कि - "स्त्री पुरुष के बीच सिर्फ नर – मादा का ही रिश्ता नहीं होता, पूर्व प्रेमियों में भी शुद्ध दोस्ती और (बृहत्तर प्रयोजन को निवेदित) सूक्ष्म विश्वास का नाता संभव है।"7 (वही – पृ०- 62) अनामिका ने प्रेम की विशुद्ध परिभाषा दी है -

"प्रेम कितना सच्चा और उदात्त है – एक के बहाने सारी दुनिया अच्छी – अच्छी लगे, यह भाव जागता है कि नहीं, जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता तब तक तो यह रोग ही माना जाएगा या कि डिस्ग्रेस।"8 (वही – पृ०- 89) इसमें संदेह नहीं समस्त सृष्टि के मूल में प्रेम प्राणतत्व के रूप में अधिष्ठित है। यह एक उदात्त अनुभूति होती है जिसके स्वरूप का विश्लेषण आत्मतत्व को आधार बनाकर किया जा सकता है। प्रेम और वासना एक नहीं है। सदियों से इसके अंतर को समझने में समाज को भ्रमित देखा गया है। प्रेम विशुद्ध और पवित्र होता है जबकि काम में स्वार्थ निहित रहता है। काम का परिणाम क्षणिक उल्लास है तो प्रेम का सात्विक आनंद। "वैयक्तिक घेरे में प्रेम और मान पाने की आकांक्षा एक नैसर्गिक इच्छा है जो शायद सबमें सहज होती है। प्रेम हमारी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। अनादर, उपेक्षा, द्वेष – ईर्ष्या, और अंधी स्पर्धा की मारी हुई इस दुनिया में जब हर व्यक्ति, हर प्रसंग एक बिदके घोड़े के समान हमारा पूरा वजूद कुचल डालने को उद्धत घूमता है – आहत अहम पर यह कितना बड़ा मरहम है कि कोई तो है जो मेरी कदर करता है, जिसकी आँखों में मुझे देखकर एक चमक सी पैदा होती है, जो मेरे उपादेयता, मेरी भलमनसाहत, मेरी पात्रता पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाता।"9 (वही – पृ०- 97) सात्विक प्रेम में कृत्रिमता के लिए कोई जगह नहीं होती क्योंकि इसमें मान देने वाले के प्रति राग नहीं होता और न ही अपमान करने वाले के प्रति द्वेष। समानता की परिभाषा यहीं पूर्णतत्व प्राप्त करती है। समाज के अनर्गल दोषारोपण, बिन मांगे दिये गए अनावश्यक खिताब से जब मन खिन्न होता है तब उस हृदयावस्था में प्रेमी का साथ मन को ऊर्जावान करने वाला होता है।

अनामिका ने इस उपन्यास में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से संदर्भों को अधिक रोचक बनाया है। सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक जगत के संदर्भ में उनके कटाक्ष पाठक की उत्कंठा को अधिक बढ़ावा देने वाले हैं कुछ उदाहरण निम्नवत हैं -

" 'जहां बोलें सब और सुने कोई नही!' भारतीय संसद की भी यही काफी सटीक – सी परिभाषा होगी, पर उसे 'बेमतलब की चिल्ल – पों' न कहकर 'मतलब की चिल्ल' – पों कहना पड़ेगा।"10 इन व्यंग्योक्तियों में हास्य और व्यंग्य दोनों ही गुण विद्यमान हैं। देश का सरकारी तंत्र हो या राजनीतिक व्यवस्था हर जगह आम जनता को हां में हां मिलाना अनिवार्य होता है। विस्थापित मजदूरों के संदर्भ में लेखिका की ये पंक्तियाँ पाठक को गहरे चिंतन के लिए अवश्य ही बाध्य करेंगी यथा - "इन तमाम गतिविधियों के किनारे विस्थापितों की वह कातर कतार भी थी जिनके श्रम का दोहन तो भरपूर था, पर जिनकी स्थिति दूध की मक्खी या कबाब की हड्डी से भी ज्यादा अवांछित करार दी गयी थी। वे बात – बेबात हिकारत सहते ही! गरीबी और अपमान – दुनिया की ये जो दो मूलभूत समस्याएँ हैं उससे उपटाया पड़ा था इनका जीवन। ये 'रूकरीज' कहलाते – कौओं का झुंड। xxxxx भूख और भ्रष्ट पुलिस के अलावा जो महामारियां इन्हें ले उड़तीं – उनमें प्रमुख थीं स्माल स्मॉल पॉक्स, टाइफस और हैजा।" 11 (पृ० – 123) इन पंक्तियों में व्यंग्य तो है पर हास्य नहीं, अर्थात ये स्थिति से पाठक का साक्षात्कार कराती हैं और सुषुप्त संवेदना को जागृत करने का प्रयत्न करती हैं। सफल साहित्यकार भावपूर्ण लेखन की इन्ही सूक्ष्मताओं की वजह से सफल होता है। अनामिका के व्यंग्य का वैशिष्ट्य सामाजिक परिवर्तन में है, शोषणमुक्त समाज की स्थापना में है तथा चिंतन मनन की स्वस्थ परंपरा की शुरुआत में है। शैक्षिक जगत के विद्रूपताओं के संदर्भ में एक व्यंग्य इस प्रकार है – अ) "भाषा विभाग के डीन कुलपति के मुट्ठी में थे। 'बिनु काज दाहिने – बायें'

करने वाले सिर्फ दुष्ट ही नहीं होते, चाटुकार भी होते हैं! जिस धीरज से गली का कुत्ता कसाई के पारे के आसपास मँडराता रहता है कि कभी तो कोई टुकड़ा कोई हड्डी छिटककर पास आएगी, बिन मांगे मोती मिलेगा, वे प्रभुत्वसम्पन्न लोगों के दरवाजे बैठे रहते हैं – वहाँ की मिट्टी सूंघते हुए, बीच बीच में एकाध लात लग जाए तो उसे भी ईश्वरीय प्रसाद मानकर ग्रहण करते हैं।"12 (161)

ब) "प्रभुतासंपन्न लोगों के साथ एक मजेदार बात यह भी होती है कि जहां कोई उनके सामने आया, एक अदृश्य भीख की कटोरी उसके हाथ में उन्हें दमकती हुई दिखने लगती है और मन आकलन करने लगता है कि सामने वाला क्या जाने क्या कह दे, क्या मांग जाए! नि:स्वार्थ मुलाकाती उनके भाग्य में कम ही लिखे होते हैं।"13 (174) विवेच्य व्यंग्योक्तियों से स्पष्ट है कि अनामिका जी अति साधारण से अति विशिष्ट स्थितियों एवं विषयों को सरल ढंग से प्रस्तुत करने में कुशल हैं। उनकी यह शैली पाठक को सुरुचिपूर्ण विनोदात्मकता के साथ – साथ पाठ के भीतर छिपे हुये व्यंजनार्थ को स्पष्ट कर देता है।

तीसरा खंड है – 'वह हंसी बहुत कुछ कहती थी'। बस्तर के जंगल में कथासत्रम के विद्यार्थी बिल्लू को लेखिका ने बस्तर का शेक्सपियर माना है। यह उपन्यास पढ़ने पर शायद कुछ लोगों को यह भ्रम हो कि यह उपन्यास निश्चित रूप से मार्क्सवादी विचारधारा का पोषक है परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि यह न तो मार्क्सवादी और न ही दक्षिणपंथी विचारधारा का वाहक है अपितु जंगल के साधारण आदिवासियों के अधिकार, उनके साथ हो रहे अत्याचार और उन पर हो रहे शोषण को कैसे मिटाया जाये, उनका हक उन्हें कैसे दिलाया जाये इस पर केन्द्रित है। विशेष यह भी है कि परिवर्तन का यह आगाज एक सुशिक्षित और संभ्रांत स्त्री करती है जिसके लिये उसे अपने पति, भाई और समाज सबसे उपेक्षित होना पड़ता है। इस सत्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि सत्य मिट सकता है परंतु झुक नहीं सकता और मिटने के पहले अपने निर्माताओं को प्रतीक स्वरूप समाज को सौंप कर ही जाता है। मान्यता का प्रयास भी कुछ ऐसा ही है कि उसके बाद उसके छात्र उसके अधूरे कार्य को, अपना परम कर्तव्य मानकर पूर्ण करने का यत्न कर रहे हैं और भविष्य में भी करते रहेंगे।

इस प्रकार के उपन्यास आज के समय में प्रासंगिक हैं परंतु इनके पाठकों की संख्या सीमित ही रहेगी। विशेषकर अनामिका के लिखे हुये को एक बार में पढ़ा तो जा सकता पर समझा नहीं जा सकता। इसके अंदर की दर्शनिकता और साहित्यिक तथ्य को एक बार में पढ़कर समझ लेना थोड़ा मुश्किल है और पढे हुये को कागज पर उतारना उससे भी अधिक दुष्कर। लेखिका ने बस्तर की समस्याओं को अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया है। व्यंग्य, संवेदना, भाषा की सरलता और क्लिष्टता, उद्देश्य को मंजिल तक पहुँचाने की उत्कंठा तथा वंचित और पीड़ित समाज के प्रति न्यायपक्षधरता निसंदेह लेखिका के पैनी और पारखी दृष्टि के परिचायक हैं। इस उपन्यास में पारंपरिक रूढ़ियों को तोड़ने, नव्य – परंपरा का सूत्रपात करने, सांस्कृतिक विद्रूपताओं को समाप्त करने, आर्थिक रूप से अक्षम आदिवासियों को न्याय दिलाने का संकल्प लक्षित है। इस लेख के माध्यम से उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण अंशों को विश्लेषित किया गया है। साहित्य – दर्शन और भाषा शैली पर इस उपन्यास में कई लेख लिखे जा सकते हैं और शोध कार्य भी किये जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

अनामिका, बिल्लू शेक्सपियर : पोस्ट बस्तर, पृ० – 47
मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री विमर्श और आत्मलोचन, पु० – साहित्यिक संवाद, सं० – एन मोहनन, पृ० – 114
अनामिका, बिल्लू शेक्सपियर : पोस्ट बस्तर, पृ०- 46
वही – पृ०- 52
वही पृ०- 49